International Journal of Advanced Research in Education and TechnologY(IJARETY)

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 9, Issue 1, January 2022 ||

हिंदी साहित्य के उत्कर्ष में प्रेमचंद के उपन्यासों का योगदान

Govind Singh Meena

Associate Professor In Hindi Department, Babu Shobha Ram Govt. Arts College, Alwar, Rajasthan, India

सार

प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य में यथार्थवाद लाया, जिसे उस समय हिंदी साहित्य में क्रांतिकारी विकास माना जाता था; उन्होने पहले अधिकांश लेख, काल्पनिक कहानियो या धार्मिक और पौराणिक कहानियाँ पर लिखे थे। वह एक समाज सुधारक और दूरदर्शी थे। उन्होंने अपनी कहानियों में वास्तविकता और यथार्थवादी स्थितियों का भरपूर प्रयोग किया है।

परिचय

इतिहास के जिस दौर में प्रेमचंद ने कथा-लेखन की शुरुआत की, उस समय उनके समक्ष दो तरह की चुनौतियां प्रमुख थीं: राष्ट्र की मुक्ति और कहानी व उपन्यास विधा को स्थापित करना। देश अंग्रेजी सत्ता की गुलामी में जकड़ा था। इस गुलामी से मुक्ति के लिए कई तरह के आंदोलन हो रहे थे। तरह-तरह के लोग इनमें शामिल थे। इन लोगों के अपने अंतर्विरोध भी थे। कुछ लोगों का मानना था कि इन अंतर्विरोधों को भूल कर, सबको इस आंदोलन में शरीक होना चाहिए। जबकि कुछ लोग ऐसे थे जो भारतीय सामाजिक संरचना में निहित शोषणामूलक आयाम देख-समझ लेते थे परन्तु अंग्रेजी दासता और औपनिवेशिक सत्ता-संरचना में निहित यातना, अत्याचार और क्रूरता उनकी दृष्टि से ओझल रहता था या इसे नजरंदाज करते थे। नतीजतन ऐसे लोगों की सारी कवायद ब्रिटिश सत्ता का हित-समर्थन करती थी।[1,2,3]

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ऐसे लोग भी थे जो स्वाधीनता आंदोलन के महत्व को समझते हुए इसका समर्थन करते थे, लेकिन इसके साथ ही इसके अंतर्विरोधों को भी उजागर करते थे, इसे ना भूलने पर जोर देते थे। सामंतवाद, जमीदारी प्रथा और जाति प्रथा के भीतर मौजूद छुआछूत ऐसे ही अंतर्विरोध थे। प्रेमचंद अंतर्विरोध की जटिलता और शोषणमूलक पहलू को समझते हुए इसका विरोध करते थे; साथ ही आजादी की लड़ाई का प्राणपण से समर्थन भी।

बतौर कथाकार प्रेमचंद के समक्ष विधा से जुड़ी कई चुनौतियां थीं। कहानी व उपन्यास का आरंभ हो चुका था। जनता के बीच इन का प्रचार-प्रसार कर महत्ता स्थापित करनी थी। कहानी एवं उपन्यास विधा का ढांचा पश्चिम से आया था। इसको देसी रूप प्रदान कर, अपने अनुरूप गढ़ना आवश्यक था। अपने कथा-संग्रह 'प्रेम द्वादशी' की भूमिका में प्रेमचंद ने लिखा है, "हमने उपन्यास और गल्प का कलेवर यूरोप से लिया है, लेकिन हमें यह प्रयत्न करना होगा कि उस कलेवर में भारतीय आत्मा सुरक्षित रहे।"

प्रेमचंद उन लोगों में से नहीं थे, जिन्हें गल्फ का यूरोपीय ढांचा स्वीकार करने से परहेज था; उन लोगों में से भी नहीं, जो इसके यूरोपीय ढांचे का उपयोग करते थे, लेकिन स्वीकार नहीं करते थे।"यूरोपीय ढांचे के भीतर भारतीय आत्मा" कायम रखना प्रेमचंद के समक्ष चुनौती थी। ऐसा करके तत्कालीन लेखक-विचारक अंग्रेजी सत्ता के वर्चस्व वादी सांस्कृतिक तर्क का प्रतिरोधी विमर्श गढ़ रहे थे। प्रेमचंद ऐसे ही लेखकों-विचारकों की श्रेणी में आते हैं।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में जिन थोड़े लेखकों ने भागीदारी की, (फणीश्वर नाथ रेणु के शब्दों में कहें तो न सिर्फ कलम से बल्कि काया से भी) प्रेमचंद उनमें से एक थे। उन्होंने स्वाधीनता-आंदोलन के लिए न सिर्फ पत्र-पत्रिकाओं में लेख और कथा लिखे, अपितु काया से शिरकत भी की। उनके कहानी-लेखन का आरंभ देश-भक्ति की कहानियों से हुआ, जिसका सभी दृष्टियों से अनवरत विकास होता गया।

प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह 'सोजे-वतन' था। इस संग्रह की कहानियों में देशभक्ति का भाव मिलता है। देशप्रेम की ऐसी कहानियां उस समय हिंदी-उर्दू किसी भाषा में नहीं लिखी गई थीं। देशप्रेम की कहानी की शुरुआत यहीं से होती है। इसकी एक

कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' का अंतिम वाक्य है, "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।" इसी भाव की वजह से अंग्रेजी सत्ता ने 'सोजे-वतन' की प्रतियां जलवायी थीं।

उन दिनों वह नवाब राय नाम से लिखते थे। अपने मित्र दया नारायण निगम के सुझाव पर, उन्होंने अपना नाम बदलकर, प्रेमचंद रख लिया। प्रेमचंद नाम से स्वाधीनता-आंदोलन से सम्बंधित 'उपदेश' शीर्षक से उनकी पहली कहानी छपी। उस समय स्वाधीनता आंदोलन को जातीय आंदोलन भी कहा जाता था। सन 1917 में प्रकाशित इस कहानी से 1935 में प्रकाशित 'कातिल की मां' तक की कहानियों के कई स्वर हैं। उनकी कुछ कहानियों में स्वाधीनता आंदोलन या उसके विभिन्न कार्यक्रमों को सीधे-सीधे विषय बनाया गया है। कुछ कहानियों का कोई पात्र स्वाधीनता- आंदोलन से जुड़ा है तो कुछ कहानियों में स्वाधीनता-आंदोलन के दौरान घटी सच्ची घटनाओं को विषय बनाया गया है। कुछ कहानियों का विषय दूसरा है, लेकिन संदर्भ स्वाधीनता- आंदोलन है।

प्रेमचंद अपने दौर के महान लेखक थे। महान लेखक अपने दौर के महत्त्वपूर्ण विचारों से सम्बंध बनाता है। प्रेमचंद के विचार भी आरम्भ से अंत तक एक नहीं रहे। सन 1917 से पहले के प्रेमचंद पर बाल गंगाधर तिलक का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रेमचंद ही नहीं, उस दौर के ज्यादातर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी लोकमान्य तिलक के विचारों से प्रभावित थे। भारतीय राजनीति में गांधीजी के आने के बाद प्रेमचंद सहित मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का बड़ा तबका गांधीजी के विचारों से प्रभावित हुआ। प्रेमचंद महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहे स्वाधीनता-आंदोलन के समर्थक थे, लेकिन यदा-कदा इसकी आलोचना भी करते थे। प्रेमचंद अपने को गांधीजी का 'कुदरती चेला' कहते थे। बावजूद इसके अपनी असहमति व्यक्त करने में कतराते नहीं थे।[4,5,6]

बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में प्रेमचंद ने कहा था कि "मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं। इस समय सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य- संग्राम में विजयी हों। यह जरूर चाहता हूं कि दो- चार उच्च कोटि की पुस्तकें लिखूं, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य प्राप्ति ही हो।"
प्रेमचंद साहित्य के जरिए भी देश के स्वराज-आंदोलन में अपनी भूमिका अदा कर रहे थे। डॉ. रामविलास शर्मा ने उन्हें ठीक ही 'स्वाधीनता आंदोलन का कथाकार' कहा है और अमृतराय ने 'कलम का सिपाही'।

सन 1917 से पहले प्रेमचन्द की रचनाओं में राष्ट्रीय प्रश्न नहीं मिलता। हालांकि इस बीच उनकी कुछ अच्छी कहानियां छप चुकी थीं। 'सोजे-वतन' में प्रेमचंद ने देशभक्ति को दिखाया था। 'उपदेश' में राष्ट्रीय आंदोलन पर विचार किया। इस प्रकार, प्रेमचन्द देशभक्ति से सफ़र शुरू करके राष्ट्रवाद के मुकाम तक गए। देशभक्ति से राष्ट्रवाद की यात्रा में उनकी दृष्टि का विकास हुआ है। इसकी पहली झलक 'उपदेश' कहानी में दिखती है। उपदेश में राष्ट्रीय आंदोलन पर विचार किया गया। सवाल उठता है कि 1917 ई० के दौरान, भू-राजनीतिक परिदृश्य में, ऐसा क्या घटित हुआ? विश्व राजनीतिक परिदृश्य में 1917 की रूसी क्रांति एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस क्रान्ति से मजदूर-किसान की शक्ति का पता चला। मजदूर-किसान की सत्ता- स्थापना ने तत्कालीन प्रगतिशील लोगों को आकर्षित किया था। देश के भीतर गांधीजी का राष्ट्रीय आंदोलन में आना और चम्पारण का किसान सत्याग्रह सर्वाधिक मत्वपूर्ण घटना थी। अब आंदोलन शहर की सीमा से निकलकर गांव की ओर आ गया। सत्याग्रह को गांधी जी ने आजादी की लड़ाई के हथियार के रूप में स्थापित किया। इसके अलावा आजादी की लड़ाई के साथ नैतिक पहलू भी जोड़ा।

'उपदेश' कहानी से प्रेमचंद के विचारों में मोड़ दिखता है। इस कहानी में राष्ट्रीय नेतृत्व की आलोचना की गई है।राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व कौन कर रहा है? उसका वर्ग चरित्र कैसा है? इस अंदोलन से फायदा किसे होगा? राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्वकारी वर्ग की सीमाएं क्या हैं? इस कहानी में वकील पंडित देव रतन शर्मा की झूठी आदर्शवादिता और जातीय सेवा के ढोल की पोल खोली गई है। ऐसा करके प्रेमचंद ने राष्ट्रीय आंदोलन को आलोचनात्मक दृष्टि से देखना शुरू किया। इसी दृष्टि का विकास "आहुति" कहानी की नायिका रुपमणि और "गबन" उपन्यास पात्र देवीदीन के सवाल के रुप में हुआ है। सवाल उठता है कि प्रेमचंद किस दृष्टि से आजादी के आंदोलन की आलोचना करते थे?

प्रो. वीर भारत तलवार की स्थापना से इस सवाल का जवाब मिल जाता है। प्रो. तलवार का मानना है कि उन्होंने किसानों के हित की दृष्टि से स्वराज्य के शिक्षित मध्यवर्गीय नेतृत्व की आलोचना की। इस स्थापना के साथ ही प्रो. तलवार ने इस पहलू पर भी ध्यान आकर्षित कराया है कि प्रेमचंद ने कभी भी किसानों के सवाल को राष्ट्रीय स्वाधीनता के सवाल से ज्यादा बड़ा नहीं माना। कहना होगा कि यह प्रेमचन्द की दृष्टि है। इसमें किसानों के सवाल की उपेक्षा नहीं होनी है पर यह स्वाधीनता से बड़ा मसला भी नहीं। प्रेमचंद की निगाह में किसानों की हित-चिंता स्वाधीनता आंदोलन के नेतृत्वकारी वर्ग की कसौटी थी। अलबत्ता किसानों का सवाल स्वाधीनता आंदोलन में अंतर्निहित था, इससे ज्यादा महत्वपूर्ण और अलहदा सवाल नहीं।

बहरहाल, एक सच्ची घटना पर होमरूल आंदोलन के दिनों में, प्रेमचंद ने "वियोग और मिलाप" कहानी लिखी। आलोचक वीर भारत तलवार ने "किसान, राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद 1918-22" में इस घटना का विस्तार से जिक्र किया है। लोकमान्य

तिलक के साथ कानपुर में घटी सच्ची घटना को इस कहानी में वैसे ही चित्रित किया गया है। अंग्रेजी प्रशासन के डर से कोई लोकमान्य तिलक को अपने घर में ठहराने के लिए तैयार नहीं था। स्वराज्य आंदोलन में भाग लेकर यश लेने उच्च-मध्यवर्ग के लोगों को, लोकमान्य तिलक को अपने घर ठहराकर, अंग्रेजी सरकार का कोप भाजन बनना मंजूर नहीं था। आंदोलन में कायर उच्च-मध्यवर्ग की भागीदारी की यह सीमा थी। अंग्रेजी सरकार का कोप भाज़न बने बगैर जितना आंदोलन हो सके, उतना ही कदम आगे बढ़ना, इस तबके का बुनियादी चरित्र था। "आदर्श विरोध" कहानी भी उच्च-मध्यवर्ग के चरित्र पर ही आधारित कहानी है।[7,8,9]

प्रेमचंद गांधीजी के असहयोग-आंदोलन के प्रतिबद्ध समर्थक थे। असहयोग- आंदोलन के दौर में गांधी जी के आह्वान से प्रेमचंद इस कदर प्रभावित हुए कि 8 फरवरी, 1921 को गोरखपुर स्थित गाजी मियां के मैदान में, बीवी- बच्चे सहित भाषण सुनने के बाद, द्वंद्व में पड़ गये। गांधी जी के असहयोग- आंदोलन की बात ने उन्हें नौकरी छोड़ने के लिए प्रेरित किया। उस समय वह बीस साल से अधिक नौकरी कर चुके थे। आगे परिवार कैसे चलेगा, प्रेमचंद इसे लेकर चिंतित थे! शिवरानी देवी ने इसकी परवाह किये बगैर नौकरी से इस्तीफा देने के लिए कहा। जब मन असहयोग के साथ, नौकरी करना मिजाज के अनुरूप नहीं तो सोचना क्या!!

अपने मित्र और 'जमाना' के संपादक दयानारायण निगम को एक पत्र में प्रेमचंद ने लिखा था कि "एक ख्वाहिश है कि देश की स्वाधीनता की लड़ाई मैं लेखन द्वारा लड़ूं"। वे लेखन के जरिये लड़ रहे थे। लेकिन इतने से मन नहीं माना! यही वजह है कि नौकरी से इस्तीफा दे दिया। प्रेमचन्द ने असहयोग- आंदोलन के प्रचार-प्रसार के लिए भी कहानियां लिखी हैं। ऐसी ही एक कहानी "लालफीता" या "मजिस्ट्रेट का इस्तीफा" है। इसी तरह की दूसरी कहानी 'मृत्यु के पीछे' है। इस कहानी का नायक ईश्वरचन्द्र धन कमाने एवं जातीय सेवा के लिए वकालत की पढ़ाई पूरी करना चाहता है। लेकिन देश-प्रेम उसे वकालत के रास्ते से हटाकर पत्र-सम्पादन की ओर आकर्षित करता है।

प्रेमचंद की कुछ कहानियों में पति स्वाधीनता आंदोलन का समर्थक है जबकि पत्नी स्वाधीनता-आंदोलन के रास्ते में रोड़े खड़ा करती है; इसके विपरीत कुछ कहानियों में पत्नी आज़ादी की लड़ाई से जुड़ी है और पति या तो उदासीन है या उसके राह में बाधा। "पत्नी से पति", "होली का उपहार" जैसी कहानियों में स्वाधीनता-आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती है जबकि पति ऐसा करने से रोकता है। पति देर से इस आंदोलन का महत्व समझ पाता है।

प्रेमचंद ने एक तरफ मध्यवर्ग के ढोंग एवं खोखली आदर्शवादिता पर कहानी लिखी है तो दूसरी तरफ "बौड़म" जैसी अनोखी कथा भी। मोहम्मद खलील (जिसे लोग उसकी आदर्शवादिता के कारण बौड़म कहते हैं!) धनी परिवार का युवक है। खिलाफत आंदोलन का समर्थक है। खिलाफत आंदोलन भी ब्रिटिश राज विरोधी आंदोलन था, जो गांधीजी, शौकत अली और रहमत अली के नेतृत्व में हुआ था। यह कहानी उच्च मध्यवर्ग, व्यवसायी वर्ग के भीतर आजादी के दीवाने चरित्र पर आधारित है। क्या यह कहने की जरूरत है कि स्वाधीनता-आंदोलन ने ऐसा चरित्र पैदा किया था! महात्मा गांधी ने विदेशी कपड़ों के बहिष्कार एवं स्वदेशी अपनाने की अपील की थी। जगह-जगह विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाती थी। विदेशी कपड़ों की दुकान में कांग्रेस के कार्यकर्ता पिकेटिंग करते थे।

प्रेमचंद की स्वाधीनता विषयक कहानियों से स्पष्ट होता है कि उनका भरोसा गांव के गरीब किसानों पर था। 'समर-यात्रा' कहानी में गरीब विधवा नोहरी का चित्रण करके दिखाया गया है कि इस वर्ग के लोगों मे आजादी के लिए कितना उत्साह था।'आहुति' कहानी को 'समर यात्रा' के साथ पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि उच्च मध्य वर्ग के लड़के, जो शहर मे पढ़ाई करते थे, आज़ादी के आंदोलन से कितना जुड़े थे! इनकी अपेक्षा गरीब छात्रों का जुड़ाव कितना गहरा था! 'आहुति' कहानी का आनंद उच्च मध्य वर्ग का लड़का है। विशम्भर गरीब है। दोनों विश्वविद्यालय में एम.ए. के छात्र हैं। स्वराज आंदोलन में दोनों हिस्सा लेते हैं। दोनों में बुनियादी फर्क क्या है? आनंद सोचता है, "आग में कूदने से क्या फायदा! यूनिवर्सिटी में रहकर भी बहुत कुछ देश का काम किया जा सकता है।" आखिरकार "आनंद महीने में कुछ- न- कुछ चंदा जमाकर कर देता है, दूसरे छात्रों में स्वदेशी की प्रतिज्ञा करा ही लेता है।"

लिहाजा "विशम्भर को भी आनंद ने यही सलाह दी।" लेकिन विशम्भर गांव में जाकर स्वराज आंदोलन का अलख जगाने निकल पड़ता है। अपनी मित्र रूपमणि से आनंद इस बारे में बहस करता है। रूपमणि विशम्भर का पक्ष लेती है। बहसो मुबहीसा में आनंद उच्च वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में कहता है, "शिक्षा और संपति का प्रभुत्व हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। हां, उसका रूप भले ही बदल जाए।" इस पर रुपमणि प्रतिवाद करती हुए कहती है-

"अगर स्वराज्य आने पर भी संपति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा- लिखा समाज यों ही स्वार्थांध बना रहे, तो मैं कहूंगी, ऐसे स्वराज का न आना ही अच्छा। अंग्रेज़ी महाजनों की धन-लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या, प्रजा इसलिए सर चढाएगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं। कम-से-कम मेरे लिए तो स्वराज का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोबिंद बैठ जाए। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूं जहां कम-से-कम विषमता को आश्रय न मिल सके।"[10,11]

रुपमणि के इस कथन के साथ "गबन" उपन्यास के किरदार देवीदीन द्वारा कांग्रेस के नेता से पूछे गये सवाल को याद करने पर प्रेमचंद की दृष्टि का पता चलता है। जब पूर्ण स्वराज के लिए आंदोलन हो रहा था तब 'जनता का लेखक' तत्कालीन नेतृत्व से उनकी भावी योजना के बारे मे सवाल पूछता है। प्रेमचंद स्वराज के पक्षधर थे, लेकिन इसके संबंध में उनकी रूपरेखा समता के मूल्य पर आधारित थी। उसमें गैर बराबरी की कोई जगह नहीं थी। प्रेमचंद की स्वाधीनता-आंदोलन से सम्बन्धित कहानियों में ऐसा दृढ़ विचार मिलता है।

स्वाधीनता-आंदोलन के नेता महात्मा गांधी ने स्वराज से सुराज की तरफ कदम बढ़ाने के लिए एक मार्ग दिखाया था। इसे गांधी-मार्ग कह सकते हैं। स्वराज और सुराज को जांचने की यह कसौटी भी है। उन्होंने भारत -भाग्य-विधाताओं को अपने जंतर के जरिए कहा था- "मैं तुम्हे एक जंतर देता हूं। जब भी तुम्हे संदेह हो या तुम्हारा अहम तुम पर हावी होने लगे तो यह कसौटी अपनाओ, जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा, क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त... तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम समाप्त होता जा रहा है।"

प्रेमचंद के किरदारों- रूपमणि और देवी दीन-के सवालों के आलोक में गांधीजी की इस जंतर के जरिए दी गई समझाइश को देखना लाजिमी है। भारत की संविधान सभा की तरफ से बाबू जगजीवन राम गांधी जी के पास गए थे, संविधान- निर्माताओं के लिए मार्गदर्शन और आशीर्वचन लेने। तब गांधी जी ने उन्हें यह जंतर लिख कर दिया था। स्वराज निकट आने के दौरान गांधी जी के सुराज का यह जंतर भारत के भावी विधान के लिए कसौटी था। इसमें निहित है गांधी-विचार का निचोड़ भी। यही प्रेमचंद के दीन-हीन किरदारों की ख्वाहिश भी थी।

विचार-विमर्श

हिन्दी में उपन्यास साहित्य का विकास अंग्रेजी उपन्यासों के प्रभावस्वरूप हुआ। आधुनिक हिन्दी गद्य की अन्य विधाओं की भांति इसका विकास भी भारतेंदु युग से होता है। पर इस विधा का पूर्ण परिपाक प्रेमचंद की रचनाओं में मिलता है। प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यास की साहित्य-यात्रा विविधमुखी है और आज भी यह गद्य की सर्वाधिक प्रसिद्ध विधा के रूप में प्रतिष्ठित है।

भारतेंदु युग में हिंदी-उपन्यास का प्रारंभ बंगला उपन्यासों के अनुवाद के रूप में हुआ। भारतेंदु का 'पूर्णप्रकाश' और 'चंद्रप्रभा' उपन्यास अनुवाद ही है। हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा-गुरु' माना जाता है, लेकिन आचार्य रामचंद्र शुक्ल श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' को हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। ये दोनों सामाजिक उपन्यास हैं। इनके बाद भारतेंदु की अधूरी कृति 'आपबीती-जगबीती' को मौलिक उपन्यास माना जाता है। भारतेंदु युग के प्रतिष्ठित उपन्यासकारों में जगमोहन सिंह (श्यामा स्वप्न), बालकृष्ण भट्ट (नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान), देवी प्रसाद उपाध्याय (सुन्दर सरोजिनी), राधाकृष्ण दास (निः सहाय हिन्दू), किशोरीलाल गोस्वामी (लवंगलता, कुसुम कुमारी), बालमुकुंद्गुप्त (कामिनी) आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन सामाजिक उपन्यासों के अतरिक्त इस युग में कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गए, पर इनमे इतिहास कम ऐयारी अधिक है। ब्रजनंदन सहायकृत 'लालचीन' और मिश्रबंधुओं का 'वीरमणि' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। लालचीन गयासुद्दीन बलबन के एक गुलाम की कहानी है और वीरमणि, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ पर की गयी चढ़ाई का कल्पना-मंडित विवरण है। इस युग में मौलिक उपन्यासों से कही अधिक अनुदित उपन्यासों की भरमार रही। मौलिक और अनूदित उपन्यासों की यह परम्परा भारतेंदु युग से द्विवेदी युग तक फैली चली आती है। इन उपन्यासों के बाद हिंदी में तिलिस्मी और जासूसी उपन्यासों की धूम-सी मच गयी। देवकीनंदन खत्री ने चंद्रकांता, चंद्रकांतासंतति तथा भूतनाथ (अपूर्ण) जैसे जासूसी और ऐयारी से भरे उपन्यास लिखे। इन अद्भुत उपन्यासों को पढ़ने के लिए कितने ही लोगो ने हिंदी पढ़ी। देवकीनंदन खत्री के पुत्र दुर्गाप्रसाद ने अपने पिता के कार्य को आगे बढ़ाया- रक्तमण्डल, लालपंजा, प्रतिशोध, सफेद शैतान आदि इनकी कृतियाँ हैं। गोपालराम गहमरी, देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी तथा किशोरीलाल गोस्वामी आदि ने इस प्रकार के उपन्यास लिखे।

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 9, Issue 1, January 2022 ||

प्रेमचंद और जासूसी उपन्यासों की कड़ी के रूप में में हरिऔध और लज्जाराम मेहता को लिया जा सकता है। हरिऔध के 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' उपन्यास तथा मेहता के 'आदर्श हिन्दू' और 'हिन्दू गृहस्थ' उपन्यास उल्लेखनीय हैं।[9,10,11]

संक्षेप में प्रेमचंद-पूर्व के उपन्यास विषयवस्तु, तत्व और भाषा सभी दृष्टियों से बिखरे हुए और अनेकरूपता लिए हुए है। अधिकतर उपन्यासों की रचना सामाजिक उपदेशों या फिर कुतूहलवर्धन की ही दृष्टि से हुई। सभी उपन्यासों में कथोपकथन शैली का आभाव और वर्णनात्मकता की प्रधानता है।

प्रेमचंद के हिंदी उपन्यास-क्षेत्र में पदार्पण करते ही, हिंदी उपन्यास कला को एक अभूतपूर्व परिपक्वता और एक निश्चित दिशा मिली। प्रेमचंद ने उर्दू से हिंदी में लिखना प्रारंभ किया। हिंदी उपन्यास को कलात्मक रूप प्रदान करने और उन्हें जनजीवन की समस्याओं के अधिक निकट लाने का श्रेय प्रेमचंद को है। प्रेमचंद के उपन्यास मनोरंजन के साथ ही तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक चेतनाओं से भी मंडित है। मानवीय जीवन का सारा संघर्ष-चित्र इनके उपन्यासों में स्पष्ट हो उठता है। प्रेमचंद की गंभीर चिंतन दृष्टि के कारन इनके उपन्यासों में मानवतावाद को प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास मिलता हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में- " प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और निष्पेषित कृषकों की आवाज थे; पर्दे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबर्दस्त वकील थे; गरीबों और बेकसों के महत्त्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुःख-सुख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों, खोमचों वालों से लेकर बैंकों, गाँव से लेकर धारा-सभाओं तक आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रमाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।" 1

प्रेमचंद उत्तर भारतीय जनजीवन को गहराई से जानने और समझने वाले संवेदनशील साहित्यकार थे। सामाजिक यथार्थों को उन्होंने देखा-सुना ही नहीं भोगा भी था। इसलिए इनके उपन्यास सामाजिकता के साक्षात् प्रतीक बन गए हैं। मानवता को सामाजिकता के इतने विस्तृत फलक पर चित्रित करने का प्रयास प्रेमचंद पूर्व के किसी भी साहित्यकार ने नहीं किया था।

डॉ. शिवकुमार मिश्र के अनुसार- "जर्मन आलोचक राबर्ट वाईमान ने कभी शेक्सपीयर पर लिखते हुए क्लासिक को, किसी बड़े लेखक को, पहचानने का एक सूत्र दिया था। क्लासिक या महान लेखक वह होता है, जो अपने विगत के महत्व को बरकरार रखते हुए वर्तमान में भी हमारे लिए उतना ही अर्थवान हो। उनका सूत्र था – Past Significance and Present Meaningfulness - अर्थात् विगत की महत्ता और वर्तमान की अर्थवत्ता। उनके अनुसार, विगत की इस महत्ता और वर्तमान की अर्थवत्ता के बीच जितना तनाव होगा, लेखक का बड़प्पन उतना ही भास्वर होकर सामने आएगा। हम समझते हैं कि प्रेमचंद में हमें क्लासिक की यह पहचान मिलती है।" 2 (प्रेमचंद का रचना संसार: पुनर्मूल्यांकन, संपादक- डॉ. सुशीला गुप्ता, 'नयी सदी में प्रेमचंद' , डॉ. शिवकुमार कुमार मिश्र का लेख, पृष्ठ-27)

कलम का सिपाही में अमृत राय प्रेमचंद के सन्दर्भ में कहते हैं, "कोई इसे गुण माने या दोष, सामयिकता मुंशी जी के कृति मन की प्रधान वृत्ति है। मुंशी जी वर्तमान में जीते हैं और वर्तमान के लिए लिखते हैं। वर्तमान को फलाँग कर भविष्य में नहीं पहुँचा जा सकता। वर्तमान से परांग्मुख होकर कोई कालजयी नहीं हुआ। वर्तमान को छोड़ते ही भविष्य की स्थिति आकाशबेल-सी हो जाती है, जो कभी नहीं फूलती। वर्तमान ही भविष्य का आधार है। उसकी खाद-मिटटी, और भविष्य की वर्तमान की सहज दिशा है, उसका गंतव्य।" 3 (कलम का सिपाही, अमृत राय, पृष्ठ-306)

प्रेमचंद समाज का अंग बनकर जिए, इसलिए वो समाज-व्यवस्था से असंतुष्ट थे और उसे तोड़ने के लिए अपनी रचना धर्मिता का भरपूर इस्तेमाल भी किया। समाज से हटकर साहित्य का कोई अर्थ उनके लिए नहीं था। साहित्य का उत्तरदायित्व सामाजिक परिवर्तन के लिए होता है- इस बात को वे बहुत गहरे अर्थ-बोध के साथ महसूस करते थे। संस्कृति और परम्पराओं के प्रति अंध-आस्था के वे पक्षधर नहीं थे। उनकी यह पुख्ता धारणा थी कि साहित्यकार का निजी जिन्दगी से नहीं, सामाजिक जिन्दगी से सरोकार होना चाहिए।

सौंदर्य की व्याख्या करते हुए प्रेमचंद कहते हैं- "प्रश्न यह है कि सौंदर्य है क्या वस्तु? हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है, उषा और संध्या की लालिमा देखी हैं, सुन्दर और सुगंधि भरे फूल देखे हैं, मीठी बोलिया बोलने वाली चिड़िया देखी हैं, कलकल निनादिनी नदियाँ देखी हैं, नाचते हुए झरने देखे हैं- यही है सौंदर्य। इन दृश्यों को देखकर हमारा अंतःकरण क्यों खिल उठता हैं? इसलिए कि इनमें रंग और ध्वनि का सामंजस्य है। बाजों का स्वर-साम्य अथवा मेल ही संगीत की मोहकता का कारण है। हमारी रचना ही तत्वों के समानुपात के संयोग से हुई है, इसलिए हमारी आत्मा सदा उसी साम्य तथा सामंजस्य की खोज में रहती है।" 4

प्रेमचंद आगे कहते हैं, "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमे उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो- जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" 5

'सोजे वतन' से लेकर 'मंगलसूत्र' तक प्रेमचंद ने एक लम्बा रास्ता तय किया। इन दो छोरों के बीच राष्ट्रीय आन्दोलन और उसके अनुभवों से प्रेमचंद की राजनैतिक चेतना के विकास और साहित्य में जीवन के यथार्थ की सच्ची पकड़ की कहानी है। 'प्रेमा '(1907) और 'वरदान' (1921) प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यास हैं। ये उस समय के उपन्यास हैं जब प्रेमचंद उर्दू में नवाब राय के नाम से लिखते थे। ये दोनों उपन्यास क्रमशः 'हमखुर्मा-ओ-हमशाबाब' तथा 'जलवाये ईसर' (उर्दू) का हिंदी रूपांतर है। ये उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत प्रौढ़ नहीं हैं। 'कायाकल्प' (1926) के पहले जितने भी उपन्यास लिखे गए वे सब उर्दू में लिखे गए थे।

'सेवासदन' (1916) उनके उर्दू उपन्यास 'बाजार-ए-हुस्न' (1914) का हिंदी अनुवाद है। प्रेमचंद का नारी-समस्या विशेषकर वेश्या-उद्धार को लेकर लिखा गया उपन्यास है। 'सेवासदन' में वेश्यायों की समस्या को मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से देखा गया है। शहर में वेश्यायों के रहने से मध्यवर्गीय युवक किस तरह बिगड़ जाते हैं और किस तरह उन्हें बचाया जा सकता है, सेवासदन की समस्या का एक पहलू यह है। उसका उत्तर यह है कि वेश्यायों को शहर से बाहर निकालकर उनमें चारित्रिक सुधार किया जाए। 'सेवासदन' की समस्या का दूसरा पहलू है वेश्यावृत्ति को ख़त्म कैसे किया जाए। किन्तु उसका उत्तर प्रेमचंद नहीं दे पाते। एक मध्यवर्गीय सुधारक की भांति सुमन को 'सेवासदन' की अधिष्ठात्री बनाकर जैसे वह इस समस्या से अपना पिंड छुड़ा लेते हैं। वेश्यावृत्ति के क्या सामाजिक या आर्थिक पहलू हैं इसका कोई संकेत हमें 'सेवासदन' नहीं मिलता। इस उपन्यास में समस्या प्रधानतः मध्यवर्ग की है और उत्तर भी मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से दिया गया है।

'प्रेमाश्रम' जो 1918-19 में लिखा गया और 1922 में प्रकाशित हुआ। यहाँ प्रेमचंद ने 'सेवासदन' से एक कदम आगे बढ़ाया है, एक मध्यवर्गीय समस्या को छोड़कर राष्ट्रीय समस्या को अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' का विषय बनाया। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने सामंती व्यवस्था द्वारा किसानों पर किये गए अत्याचारों का चित्रण किया है, उनके विद्रोह को प्रस्तुत किया है, किन्तु उपन्यास का अंत संघर्ष द्वारा विजय या उसमे हार से नहीं होता, वरन यांत्रिक आदर्शवाद द्वारा होता है। किसानों के शोषण का जितना नंगा चित्र प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में प्रस्तुत किया है उतना किसी उपन्यास में नहीं। 'प्रेमाश्रम' के खलनायक ज्ञानशंकर जैसा पतित चरित्र उनके किसी उपन्यास में नहीं मिलता। पुलिस और साम्राज्यवाद के अन्य यंत्रों द्वारा सामंती व्यवस्था को किस तरह शक्ति पहुँचाता है, इसका भी चित्र इन्होंने इस उपन्यास में खींचा है।

'रंगभूमि' (1924) प्रेमचंद का वृहदाकार का उपन्यास है। इसका फलक गोदान की अपेक्षा अधिक व्यापक और संघर्षकर्मी है। इसकी कथा बनारस से लेकर राजस्थान तक व्याप्त हैं। इसमें गांधी की असहयोगपरक नीति, औद्योगीकरण की समस्या तथा स्वछंद प्रेम और बलिदान का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है। इसका मुख्य पात्र सूरदास है। जिसने अपने व्यक्तित्व द्वारा इस उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास बना दिया है।[10]

'कर्मभूमि' (1932) यदि राजनीतिक चेतना से मंडित उपन्यास है तो प्रतिज्ञा (1904) प्रेमचंद का एक सामाजिक एवं यथार्थवादी उपन्यास, जो विधवा विवाह की समस्या पर आधारित है। यह उपन्यास विषम परिस्थितियों में घुट-घुटकर जी रही भारतीय नारी की विवशताओं और नियति का वृहत आख्यान है, तो वही निर्मला (1927) अनमेल विवाह और दहेज़-प्रथा की दुःखांत त्रासद महागाथा बन जाती है।

'गबन' (1930) मध्यवर्गीय जीवन और मनोवृत्ति का जितना सफल चित्रण प्रेमचंद ने 'गबन' में किया है, उतना उनके साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। आभूषण-लालसा और अंग्रेजी कचहरियों में होने वाली धमाचौकड़ी तथा बेईमानी एवं नारी के विविध चरित्रों को बेहद करीब से दर्शाया गया है। औपन्यासिक कला की दृष्टि से से भी यह एक सर्वोत्तम रचना हैं।

'कायाकल्प' (1928) प्रेमचंद का वायवी और योग सम्बन्धी कल्पनाओं से मंडित उपन्यास है। कृषक-जमींदार संघर्ष को इसमें भी स्थान मिला हैं। यह एक प्रयोगशील उपन्यास है किन्तु कथा विन्यास की दृष्टि से शिथिल उपन्यास कहा जा सकता है।

'गोदान' (1936) प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों से भिन्न यथार्थवादी-दृष्टीकोण से एक भारतीय कृषक की दीन-हीन दशा का चित्रण है। गोदान के पहले के उपन्यासों में प्रेमचंद का दृष्टिकोण प्रायः आदर्शवादी रहा है। घटनाओं का यथार्थ चित्रण करते हुए भी वे उनका समाधान आदर्श में करते रहे। इन उपन्यासों में वे एक तरह से आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रहे। परन्तु 'गोदान' में होरी के यथार्थ चित्रण में उन्होंने पुराना दृष्टिकोण छोड़ दिया है। यहाँ वे पूर्णतया यथार्थवादी रहे हैं। 'गोदान' के सन्दर्भ में वरिष्ठ आलोचक वीरेंद्र यादव का कथन है- "1936 में 'गोदान' का प्रकाशन हिंदी उपन्यास का एक नया प्रस्थान बिंदु था, वही आज भी इसका प्रासंगिक बना रहना इसके कालजयी होने का प्रमाण है। होरी सरीखे किसानों की त्रासदी के सन्दर्भ तब चाहे जितने भिन्न रहे हों, लेकिन किंचित बदले हुए स्वरूप में वे आज भी मौजूद हैं। खेती का दिनोंदिन अनुत्पादक होते जाना, किसान की अपनी बेदखली, कृषि मजदूरों का शहरों की ओर पलायन, किसान से मजदूर होने की प्रक्रिया और जीवित रहने का संघर्ष जिस तरह आज वैश्वीकृत भारत का यथार्थ है, वह एक नए 'गोदान' की जरूरत दरपेश करता है।" 6

आलोचक वीरेंद्र यादव 'गोदान' की व्याख्या करते हुए कहते हैं- "सच है कि होरी देशज सत्ता-संरचना से ही उत्पीड़ित था। उसे खेत से बेदखल करने वाले गाँव के पुरोहित और मुखिया थे। होरी के त्रासदी के मूल में दो घटनाएँ थी- द्वार पर खूँटे से बंधी गाय का मरना और बेटे गोबर द्वारा गैर-बिरादरी की विधवा झुनिया को पत्नी के रूप में अपनाना। होरी इन दोनों घटनाओं के लिए उत्तरदायी नहीं था। लेकिन वर्णाश्रम व्यवस्था में शूद्र होने की नियति के चलते उसे धर्म, बिरादरी, मरजाद के बंधनों में जकड़ कर पहले जुर्माना और डांड़ के बहाने कर्ज के जाल में फँसाया गया, फिर उसकी जमीन-जायदाद गिरवी रख कर किसान से मजदूर होने के लिए बाध्य किया गया। यहां प्रेमचंद भारतीय समाज की उस विभेदकारी जातिगत संरचना को बेपर्दा करते हैं, जो आज के भारत का सच है।" 7

जीवन और समाज के प्रति प्रेमचंद का यथार्थवादी दृष्टिकोण उनमें एक ऊंचे स्तर की मानवता को जन्म दे सका; वह मानवता जो शोषितों के लिए वेदना से भरी हुई थी और शोषकों के लिए घृणा से। 'गोदान' के सिलिया-मातादीन प्रसंग में सिलिया का पिता हरखू चर्मकार अधिकारपूर्वक यह मांग करता है कि 'तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं... हमारी इज्जत लेते हो, अपना धरम हमें दो।' हरखू द्वारा पंडित मातादीन के मुँह में हड्डी डालने के प्रसंग में प्रेमचंद सोच-समझकर प्रतिरोध का धार्मिक मुहावरा अपनाते हैं, क्योकि जो धर्म मात्र 'खानपान' , 'छूत विचार' पर टिका हुआ था उसे 'जनेऊ तोड़ने' और खानपान को भ्रष्ट करके ही चुनौती दी जा सकती थी। वीरेंद्र यादव पुनः 'गोदान' के विषय में लिखते हैं- "सही अर्थ में 'गोदान' आजादी के पूर्व बनते हुए राष्ट्र का रूपक है। इसे किसान जीवन की महागाथा के रूप में सीमित न करके भारतीय राष्ट्रवाद के आलोचनात्मक भाष्य के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। 'गोदान' के जिन अंशो को नगरीय और ग्रामीण जीवन की फाँक के रूप में ग्रहण कर अनावश्यक मानने का सरलीकरण किया जाता रहा है, उन्हीं में भारतीय राष्ट्र बनने की प्रक्रिया और वर्तमान जनतंत्र की विकृति की पहचान भी की जा सकती है। राय साहब, मेहता, खन्ना और मिर्जा सरीखे आरामतलब भू-स्वामियों, बौद्धिकों, पूजीपतियों द्वारा पुष्पित-पल्लवित राष्ट्रीय आंदोलन किस तरह के जनतंत्र की नींव डालेगा, इसके भरपूर संकेत प्रेमचंद ने गोदान में दिए हैं।" 8

'मंगलसूत्र' (1936) प्रेमचंद का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास है। साहित्यिक के जीवन की समस्या पर आधारित इस उपन्यास के सिर्फ चार अध्याय ही लिखे जा सके। समीक्षकों की दृष्टि में इसमें लेखक ने आत्मचरित निबद्ध करना चाहा था। 'मंगलसूत्र' उपन्यास का यह अंश विशेषरूप से उल्लेखनीय होगा जिसमें देवकुमार कहते हैं- "हाँ, देवता हमेशा रहेंगे और हमेशा रहे हैं। उन्हें अब भी संसार धर्म और नीति पर चलता हुआ नजर आता है। वे अपने जीवन की आहुति देकर संसार से विदा हो जाते हैं। लेकिन उन्हें देवता क्यों कहो? कायर कहो, स्वार्थी कहो, आत्मसेवी कहो। देवता वह है जो जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जानकर अनजान बनता है तो धर्म से गिरता है। अगर उसकी आँखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी, देवता किसी तरह नहीं। और देवता बनने की जरूरत भी नहीं देवताओं ने ही भाग्य और ईश्वर भक्ति की मिथ्याएँ फैलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने अब तक इसका अंत कर दिया होता या समाज का ही अंत कर दिया होता तो इस दशा में जीने से कहीं अच्छा होता। नहीं, मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा। दरिंदो के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजो का शिकार बनना देवतापन नहीं जड़ता है।" 9

27 फरवरी 1933 के 'जागरण' के संपादकीय में प्रेमचंद लिखते हैं, "संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गाँठ है। जब तक संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा तब तक मानव समाज का उद्धार नहीं हो सकता। मजदूरों के काम घटाइए, बेकारों को गुजारा दीजिये, जमीदारों और पूंजीपतियों के अधिकारों को घटाइए, मजदूरों और किसानों के स्वत्वों को बढ़ाइए, सिक्के के मूल्य घटाइए, इस तरह के चाहे जितने सुधार आप करें; लेकिन यह जीर्ण दीवार इस टीपटाप से नहीं खड़ी रह सकती। इसे नए सिरे से गिराकर उठाना होगा।" 10

श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' ने उन पर आक्रमण किया कि प्रेमचंद की कहानियों एवं उपन्यासों में ब्राह्मणों को काले रंग में चित्रित किया गया है क्योंकि उनमें पुजारियों और पुरोहितों पर आक्रमण किया गया है। प्रेमचंद ने इसका उत्तर उन्हें अत्यंत तीखे शब्दों में इस प्रकार दिया है- "हिन्दू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक; यही टकेपंथी दल है, जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है। हमारी राष्ट्रीयता के मार्ग में यही सबसे बड़ी बाधा है। ... हमारा आदर्श सदैव से यह रहा है कि जहाँ धूर्तता, पाखण्ड और सबलो द्वारा निर्बलों पर अत्याचार देखो, उसको समाज के सामने रखो, चाहे हिन्दू हो, पण्डित हो, बाबू हो, मुसलमान हो या कोई हो। हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि सामाजिक जुए से भी, इस पाखण्डी जुए से भी, जो विदेशी शासन से अधिक घातक है।" 11

प्रेमचंद के पात्र सूरदास, होरी, गोबर, बलराज, धनियां, झुनिया और इनके जैसे अनेक व्यक्ति उनके उपन्यासों में हैं। उनमे वह निष्ठा, उत्सर्ग की भावना, संयम, संतोष, उद्दम से प्रेम, सामूहिकता की प्रवृत्ति, धैर्य इत्यादि गुण भी है जो हमें अन्यत्र नहीं मिलते और जो अवसर मिलने पर समाज में ऊँचा से ऊँचा सम्मान प्राप्त कर सकते हैं। उनके चरित्र में वे तत्व हैं जिनसे हम सुंदर से सुंदर, उच्च से उच्च संस्कृति का निर्माण कर सकते हैं। उनका व्यक्तित्व मानो कुम्हार की मिट्टी-सा है जिसको अच्छा सामाजिक सांचा मिलने पर रूपवान बनाया जा सकता है।

इस प्रकार प्रेमचंद की भारतीय समाज की जो गहरी आंतरिक समझ थी वह उन्हें एक साथ महान लेखक और समाजशास्त्री के रूप में प्रतिस्थापित कर देती है। यही कारण है कि देश के विभिन्न विचारधाराओं के लोगों के मतभेद कितने ही गहरे क्यों न हो परन्तु प्रेमचंद को एक महान मानवतावादी लेखक के रूप में स्वीकार करते हैं। यही प्रेमचंद होने की प्रासंगिकता है और सदैव बनी रहेगी।

परिणाम

प्रेमचन्द – शायद ही कोई भारतीय इस नाम से परिचित नहीं है। हिन्दी और उर्दू साहित्य की गहरी समझ रखनेवाले प्रेमचन्द को शब्दों में बयां करना आसान नहीं है। उनपर जितना लिखा जाये कम ही होगा। उत्तरप्रदेश के बनारस के समीप लमही की धरती पर 31 जुलाई 1880 को जन्म लेनेवाले धनपत राय श्रीवास्तव को बचपन से ही कहानियां सुनने का शौक था। यही शौक उन्हें आगे चलकर कहानीकार और उपन्यासकार बना दिया। उनके पिता डाकघर में मुंशी का काम करते थे। प्रेमचन्द भी सरकारी नौकरी में थे। गोरखपुर के स्कूल में शिक्षक थे। यही वजह रही कि उन्होंने शुरुअती दिनों में नवाब राय नाम से उर्दू में कहानियां लिखनी शुरु की थी। देश की जनता पर अंग्रेजी हुकूमत द्वारा किये जा रहे अत्याचार के खिलाफ भी उनकी लेखनी धारदार रही। उनकी लेखनी से परेशान अंग्रेजी हुकूमत ने उनकी रचना 'सोजेवतन' (सोजेवतन) को जब्त कर लिया था और उनपर प्रतिबंध लगा दिया। इसी के बाद धनपत राय श्रीवास्तव ने प्रेमचन्द उपनाम से कहानियां और उपन्यास लिखनी शुरू की। प्रेमचंद की प्रारंभिक शिक्षा भले ही उर्दू में हुई थी लेकिन हिन्दी और अंग्रेजी पर भी उनकी समान पकड़ थी। बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय प्रेमचन्द की लेखनी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इन्हें उपन्यास सम्राट कहना शुरु कर दिया और तब से वह इस उपनाम से भी विख्यात हो गये।

प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य को नयी दिशा दी है। प्रेमचन्द की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है जितना कि उनके दौर में रही है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में आम जनजीवन खासकर किसानों, महिलाओं और दबे-कुचले लोगों की पीड़ा का जिस तरह जीवंत वर्णन किया गया है अन्य लेखकों की लेखनी में उसका अभाव दिखता है। किसान जीवन के यथार्थवादी चित्रण में प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में अनूठे और लाजवाब रचनाकार रहे हैं। प्रेमचन्द का कथा साहित्य जितना समकालीन परिस्थितियों पर खरा उतरता है, उतना ही बहुत हद तक आज भी दिखाई देता है। उनकी रचनाओं में गरीब श्रमिक, किसान और स्त्री जीवन का सशक्त चित्रण 'सद्गति' , 'कफन' , 'पूस की रात' और 'गोदान' में मिलता है। 'रंगभूमि' , 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' के किसान आज भी गांवों में देखे जा सकते हैं। साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का योगदान अतुलनीय है। उन्होंने कहानी और उपन्यास के माध्यम से लोगों को साहित्य से जोड़ने का काम किया, उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास और कहानियां आज भी प्रासंगिक हैं।

प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परम्परा का विकास किया जिसने पूरी शती के साहित्य का मार्गदर्शन किया। वह एक संवेदनशील लेखक, सचेत नागरिक, कुशल वक्ता और सुधी सम्पादक थे। इनकी कहानियों में जहां एक ओर रूढियों, अंधविश्वासों, अंधपरंपराओं पर कड़ा प्रहार किया गया है, वहीं दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं को भी उभारा गया है। दरअसल, जिस समय उनका जन्म हुआ था रूढ़ीवादी परम्पराएं बहुत गहरी पैठ बना रखी थीं। यही वजह है कि अपने जीवन काल में वह विभिन्न सुधारवादी और पराधीनता की स्थितिजन्य नवजागरण प्रवृत्तियों से प्रभावित रहे हैं। 'गोदान' में तो यह अपनी पराकष्ठा पर पहुंच गयी है। यदि प्रेमचन्द युग का आरंभ 'सेवासदन' में है तो उसका उत्कर्ष 'गोदान' में है। वह आदर्शों और विचारधाराओं को अपने पात्रों पर थोपते नहीं हैं, बल्कि अन्तर्मन या अन्तरात्मा की आवाज की तरह स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित होने देते हैं। प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' और 'कायाकल्प ' में साम्प्रदायिक समस्या उठायी गयी है वहीं 'सेवासदन' , 'रंगभूमि' , 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में अन्तरजातीय विवाह के मुद्दे को उठाया गया है। 'गबन' और 'निर्मला' में मध्यम वर्ग की कुंठाओं का बड़ा ही स्वाभाविक और सजीव चित्रण किया गया है। 'कर्मभूमि' में हरिजनों की स्थिति और उनकी समस्याओं को बहुत ही बढ़िया ढंग से रखा गया है। 'कफन' के घीसू और माधव हों या 'ईदगाह' का हामिद, या 'बूढ़ी काकी' , सभी कहानियों में उन्होंने यथार्थ को रखा है। उन्होंने खुद रूढ़ीवादी परम्पराओं को तोड़ा और बालविधवा शिवरानी देवी से विवाह कर समाज को यह बताने की कोशिश की कि रूढ़ीवादी परम्परा से ऊपर उठकर नारी को बराबरी का दर्जा और सम्मान देना होगा।

प्रेमचंद का पहला उपन्यास 'सेवासदन' था।[11] यह 1918 ई. में प्रकाशित हुआ था। प्रेमचन्द युग की शुरुआत यहीं से हुई बतायी जाती है। उस समय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और समाज सुधार आन्दोलन का काल था। समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और धार्मिक आडम्बरों के खिलाफ विद्रोह की भावना पनप रही थी। प्रेमचन्द की रचनाओं ने आन्दोलन को गति देने का काम किया। प्रेमचन्द ने देवकीनन्दन खत्री की उस धारणा को भी नेस्तनाबूद कर दिया जिसमें वह उपन्यास को मनोरंजन और उपभोग का उपकरण मात्र मानते थे। प्रेमचन्द ने बता दिया कि उपन्यास सामाजिक जीवन का निर्माण करनेवाला एक चेतन प्रभाव है।

निष्कर्ष

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सुधारवादी और आदर्शवादी रूप मिलता है। आदर्श, कर्तव्य, प्रेम, करुणा, समाज . सुधार, देशभक्ति, सत्याग्रह, अहिंसा, स्त्री-व्यथा, मध्यवर्गीय मनुष्य की त्रासदी, कृषक जीवन की समस्याएं, मेहनतकश जनता का संघर्ष, सबकुछ है उनके उपन्यासों में। हालांकि आगे चलकर उन्होंने यथार्थ को ज्यादा तरजीह दी। यही वजह है कि गोदान में उनका आदर्शवाद पूरी तरह बिखर गया और उसका स्थान क्रूर यथार्थ ने ले लिया। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के शब्दों में- "गोदान हिन्दी की ही नहीं, स्वयं प्रेमचन्द

की भी एक अकेली औपन्यासिक कृति है, जिसका विराट् विस्तार, निर्मम तटस्थता, यथार्थता और सरलता की पराकाष्ठा तक पहुंचकर अत्यंत विशिष्ट बन गयी है। ऐसी शैली किसी एक भारतीय उपन्यास में नहीं मिलती।' ' [11]

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास- हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ- 229, प्रकाशन- राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1 बी., नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, संस्करण- 2003

2. 'गोदान' और दलित प्रसंग- ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ- 71, 'वर्तमान साहित्य' , अप्रैल- 2009

3. 'गोदान' और दलित प्रसंग- ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ- 71, 'वर्तमान साहित्य' , अप्रैल- 2009

4. 'गोदान' और दलित प्रसंग- ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ- 71, 'वर्तमान साहित्य' , अप्रैल- 2009

5. 'गोदान' और दलित प्रसंग- ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ- 71, 'वर्तमान साहित्य' , अप्रैल- 2009

6. 'जहाँ से रोशनी की लकीर निकलती है' - वीरेंद्र यादव, जनसत्ता, 31 जुलाई, 2016

7. 'जहाँ से रोशनी की लकीर निकलती है' - वीरेंद्र यादव, जनसत्ता, 31 जुलाई, 2016

8. 'जहाँ से रोशनी की लकीर निकलती है' - वीरेंद्र यादव, जनसत्ता, 31 जुलाई, 2016

9. लोकदृष्टि और हिंदी साहित्य- चंद्रबली सिंह, 'प्रेमचंद की परंपरा' आलेख से, पृष्ठ-137, प्रकाशन- पीपुल्स लिटरेसी, 517 मटिया महल, दिल्ली- 110006, प्रथम संस्करण: 1986

10. लोकदृष्टि और हिंदी साहित्य- चंद्रबली सिंह, 'प्रेमचंद की परंपरा' आलेख से, पृष्ठ-138, प्रकाशन- पीपुल्स लिटरेसी, 517 मटिया महल, दिल्ली- 110006, प्रथम संस्करण: 1986

11. लोकदृष्टि और हिंदी साहित्य- चंद्रबली सिंह, 'प्रेमचंद की परंपरा' आलेख से, पृष्ठ-139, प्रकाशन- पीपुल्स लिटरेसी, 517 मटिया महल, दिल्ली- 110006, प्रथम संस्करण: 1986